A Pratibha Spandan's Journal

SWAR SINDHU
(National Peer-Reviewed/Refereed Journal of Music)
A UGC CARE listed Journal
ISSN 2320–7175 (O) | Volume 13, Issue 01, January-June, 2025
http://swarsindhu.pratibha-spandan.org © The Author(s) 2025

हेवली संगीत में राग, वाद्य व तालों की परम्परा

Kusum Singh[1], Prof. Sangeeta Singh[2]

1 Research Scholar, Department of Instrumental Music, Faculty of Performing Arts, Banaras Hindu University, Varanasi
2 Professor, Department of Instrumental Music, Faculty of Performing Arts, Banaras Hindu University, Varanasi

OPEN ACCESS

सारांश

भगवान श्रीकृष्ण का कथन है, ''वेदनां समवेदोऽस्मि।।'' वेदों का कथन है, 'अंगुष्ठमात्रः पुरूषोऽन्तरात्मा सदा जनानां हृदये सन्निविष्टः।' संगीत अनादिकाल से ही ईश्वरोपासनां का प्रमुख साधन रहा है। ईश्वरोपासना के लिए एक सुनिश्चित भक्ति प्रणाली भक्ति काल में मिली 'हवेली संगीत' का संकीर्तन उसी की देन है। साधारणतः संगीत का गुण तन्मयता है और उसके ऊर्ध्वमुखी होने पर मनुष्य ईश्वर की ओर प्रवृत्त होता है। यही कारण था कि विश्व के सभी धर्मों में संगीत को विशिष्ट स्थान दिया गया। नवधा भक्ति द्वारा आराध्य की आराधना के साथ-याथ अपने 'स्व' को समर्पित करके, आराध्य से तदात्म्य स्थापित करना गायकों के जीवन का परम ध्येय है। 'हवेली संगीत' उसी तन्मयता का दूसरा नाम है। हवेली संगीत वह भक्ति संगीत है जो वल्लभीकुल संप्रदाय के आचार्यो द्वारा स्थापित सेव्य ठाकुर (प्रतिमा) के सम्मुख होता है। यह ठाकुर बड़े मकान (हवेली) में एक पूजा घर बनाकर उसमें बाल भाव से स्थापित होते है और उनकी बालभाव में ही अष्टयाम की सेवा आठ झांकियों में की जाती है और षड् ऋतु में इन कृष्ण स्वरूप रूपी बालक की आवश्यकतानुसार मनोवैज्ञानिक रीति से जो सेवा पदों द्वारा की जाती है वही गायन हवेली संगीत कहलाता है।

मुख्य शब्द- *श्रीमद्भागवत्, हवेली संगीत, पुष्टिमार्गीय, वैष्णव, विष्णोंस्मरणं, अष्टछाप*

भूमिका

श्रवणं कीर्तनं विष्णोंस्मरणं पाद सेवनम्।
अर्चनं वन्दनं हास्यं सख्यमात्मनिवेदनम्।।

(श्रीमद्भागवत्, 7.5.23)

श्रीमद्भागवत् के उपर्युक्त श्लोक के अनुसार समस्त वैष्णव मंदिरों में श्रवण और कीर्तन की योजना सदैव से रही आयी है। कहीं पर दर्शन खुलने से पहले, कहीं बाद में तो कहीं दोनों समय भगवान का स्मरण करते हुए कीर्तन-भजन गाये जाते हैं। पंचललित कलाओं में सर्वप्रमुख स्थानासीन हमारा भारतीय संगीत, सृष्टि के उद्भव काल से ही हमारे जन-जीवन में अभिन्न रूप में समन्वित होकर अखिल विश्व को आनंदित एवं आप्लावित करता आ रहा है। इतना ही नहीं प्रारम्भ से ही संगीत कला को एक ओर तो ईश्वर आराधना एवं मोक्ष प्राप्ति के साधन के रूप में अपनाया जाता रहा है। वहीं दूसरी ओर जन मनोरंजन के साधन के रूप में जन-जीवन शैली में महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त है।

इसके अन्तर्गत संगीत अपने दो मौलिक तत्व ध्वनि (स्वर) तथा गति (लय) के सहारे मुखरित होकर अखिल विश्व में अपने माधर्यु से हमारे जीवन के प्रायः प्रत्येक पहलू को आनंदित करता आ रहा है। संगीतोपयोगी नाद के रूप में यही ध्वनि अथवा अपने विभिन्न स्वरूपों में विशेष नियमों के अन्तर्गत समूहगत होकर राग, वाद्य व तालों को जन्म देता है। साधारणतः संगीत का गुण तन्मयता है और उसके ऊर्ध्वमुखी होने पर मनुष्य ईश्वर की ओर प्रवृत्त होता है। यही कारण था कि विश्व के सभी धर्मों में संगीत को विशिष्ट स्थान दिया गया। नवधा भक्ति द्वारा आराध्य की आराधना के साथ-याथ अपने 'स्व' को समर्पित करके, आराध्य से तदात्म्य स्थापित करना गायकों के जीवन का परम ध्येय है। 'हवेली संगीत' उसी तन्मयता का दूसरा नाम है।

दूसरी ओर विट्ठलदास के अष्टछाप परम्परा के भक्त कवियों ने कृष्ण-लीला के पदों से संगीत की ऐसी अलख जगायी कि उनके कीर्तन और विष्णु पदो से मंदिरों के प्रांगण में ''हवेली संगीत'' का प्रादुर्भाव हुआ। इस कारण हवेली संगीत के रूप में ध्रुवपद-धमार का ऐसे विशिष्ट घराने का सृजन हुआ, जहाँ से ब्रजभाषा के ध्रुवपद और धमार गीतों का विस्तार होता चला गया। सूर, तुलसी, मीरा और कबीर आदि भक्त कवियों की वाणी ने भारतीय संगीत को और अधिक निखारा तथा उसकी आध्यात्मिक और धार्मिक पृष्ठभूमि को और भी दृढ़ता प्रदान की। इन भक्त कवियों के काव्य में अनेक वाद्य यंत्रों के प्रयोग का उल्लेख मिलता है। जैसे- खज, मुरज, बांसुरी, झालरी, बीन, सूरमंडल, मंजीरा, पखावज। इन भक्त कवियों, कीर्तनियों और अष्टछाप के भक्तों ननें एक ओर जन साधारण में संगीत को प्रचलित किया। दूसरी ओर अपने आराध्य कृष्ण की नित्य लीला के पदों से

SWAR SINDHU
(National Peer-Reviewed/Refereed Journal of Music)
A UGC CARE listed Journal
ISSN 2320–7175 (O) | Volume 13, Issue 01, January-June, 2025
http://swarsindhu.pratibha-spandan.org © The Author(s) 2025

भारतीय शास्त्रीय संगीत के कलेवर को पर्याप्त मात्रा में समृद्ध किया। सच पूछा जाए तो शास्त्रीय संगीत का ''पेटेण्ट'' अथवा 'मॉडल'' कहलाए जाने वाली ध्रुवपद और धमार गीत शैली का सृजन मंदिरों में गाए जाने वाले 'हवेली संगीत' से हुआ, जिनकी गुनगुनाहट आज भी राजस्थान के श्रीनाथ द्वारा और मथुरा के द्वारिकाधीश जैसे मंदिरों में सुनाई दे सकती है।

भगवान श्रीकृष्ण का कथन है, **''वेदनां समवेदोऽस्मि।।''** वेदों का कथन है, **'अंगुष्ठमात्रः पुरूषोऽन्तरात्मा सदा जनानां हृदये सन्निविष्टः।'** संगीत अनादिकाल से ही ईश्वरोपासनां का प्रमुख साधन रहा है। ईश्वरोपासना के लिए एक सुनिश्चित भक्ति प्रणाली भक्ति काल में मिली 'हवेली संगीत' का संकीर्तन उसी की देन है। इस प्रकार 'हेवली संगीत' की परम्परा का मूल वेद में है और वह स्वयं ईश्वर से ही अवतरित हुयी है।

पुष्टि मार्गीय हवेली संगीत का उद्भव

संवत् 1556 वि. में जब श्री वल्लभाचार्य जी द्वितीय बार मथुरा आयें तब वे गोवर्धन गये तथा वहाँ से लगभग दो मील दक्षिण मे स्थित आन्यौर गाँव में सद्दू-पाँडे के चबूतरेपर ठहरे। वहाँ उन्हें मालूम हुआ कि वहीं गिरिराज पर्वत की एक कन्दरा से एक भगवद् स्वरूप प्रकट हुआ है तो उन्होंने शीघ्र ही वहाँ जाकर उस दिव्य स्वरूप के दर्शन किये तथा उस विग्रह को जिसे माधवेन्द्रपुरी ने 'गोपाल' कह कर पुकारना प्रारम्भ कर दिया था आचार्य जी ने 'श्रीनाथ जी' के नाम से सम्बोधित करना आरम्भ कर दिया तथा उसी स्थान पर एक छोटा सा कच्चा मन्दिर बनवाकर उसमें उस स्वरूप की विधि पूर्वक स्थापना की। उसी समय सद्दू पांडे, कुंभनदास, मानिकचन्द्र पांडे, रामदास चौहान, अच्युतदास आदि श्रीवल्लभाचार्य के शिष्य हुए थे I आचार्य जी ने रामदास चौहान को श्रीनाथ जी की सेवा करने के लिये नियुक्त किया। उस समय सद् पाण्डे व अन्य बजवासी सेवा में सहयोग थे तथा श्री कुंभनदास को कीर्तन करने की सेवा प्रदान की गई।' श्री कुंभनदास अष्ट छाप कवियों में से ही एक थे लेकिन सभी अन्य भक्त कवि गायकों से उम्र में बड़े थे तथा सम्प्रदाय में उन सबसे पहिले संवत् 1556 वि. में दीक्षित हुए थे।

अष्ट छाप के अन्य कवि- गायकों का सम्प्रदाय में प्रवेश निम्न तालिका के अनुसार है-

	नाम	पुष्टिमार्ग में प्रवेश करने की तिथि
1	श्री कुंभनदास	संवत् 1556 विक्रम
2	श्री सूरदास	संवत् 1567 विक्रम
3	श्री कृष्णदास	संवत् 1568 विक्रम
4	श्री परमानन्ददास	संवत् 1577 विक्रम
5	श्री गोविन्द स्वामी	संवत् 1592 विक्रम
6	श्री छीतस्वामी	संवत् 1592 विक्रम
7	श्री चतुर्भुजदास	संवत् 1597 विक्रम
8	श्री नंददास	संवत् 1607 विक्रम

स्थान व समय

इस प्रकार श्री गोवर्धन पर्वत पर (आन्यौर गाँव के पास) श्री कुंभनदास (गोवर्धन के पास जमुनामतौ ग्राम के निवासी) भक्त गायक द्वारा पुष्टिमार्गीय वैष्णव मन्दिरों के संगीत अथवा पुष्टिमार्गीय कीर्तन प्रणाली का सूत्रपात हुआ। आगे चलकर अष्ठ-छाप के अन्य भक्त गायकों ने मिलकर गोस्वामी श्री विट्ठलनाथ जी से प्रेरणा पाकर इसके स्वरूप को वैभव प्रदान किया।

हवेली संगीत का अर्थ

पुष्टिमार्गीय संप्रदायों के मंदिर 'हवेली' के नाम से प्रसिद्ध है। हवेली शब्द 'फारसी' भाषा का है जिसका अर्थ है "भव्य एवं सुख सुविधा की दृष्टि से बना हुआ सुन्दर निवास स्थान।" इन मंदिरों को हवेलो क्यों कहा जाता है इसका उल्लेख करना अनिवार्य है— ईश्वर जन समुदाय तो क्या, सकल सृष्टि के प्राणिमात्र में व्याप्त है— बस यही भाव 'हवेली' शब्द में है। ईश्वर का वास 'मंदिर' और 'राजगृह' में अलग नहीं होता। वैष्णव सम्प्रदाय का यह 'लाल' सर्वव्याप्त है। जिनकी क्रीड़ायें हर किसी को लुभाती हैं। वह भगवान कृष्ण जो वैष्णवों के देव, राजराजेश्वर है। इन्हीं देव का पूजन 'हवेली संगीत' है।"

बल्लभ पुष्टि प्रकाश (888) में कहा गया है—"श्री गोसाई जी की सेवा इस प्रकार सब धर्म में विद्यमान है। कोई-कोई सेवा की रीति भाँति अंतर पड़े है तापो कारण यह है कि वहाँ जो स्वरूप विराजें, तिनकी लीला भावना सो ऐसा होये है। कहुँ नन्दलाल की लीला, कहुँ निकुंज की लीला है।"

SWAR SINDHU
(National Peer-Reviewed/Refereed Journal of Music)
A UGC CARE listed Journal
ISSN 2320–7175 (O) | Volume 13, Issue 01, January-June, 2025
http://swarsindhu.pratibha-spandan.org © The Author(s) 2025

देव-पूजन मनुष्य मात्र आराधना, उपासना, प्रार्थना, अर्चन, आरती, स्तुति अथवा कीर्तन के द्वारा करते हैं। हवेली में यह सब संगीत से ही होता है। हवेली की 7 पीछें (मकानों) सेव्य ठाकुर (प्रतिमा) बाल भाव से स्थापित होती है।

हवेली संगीत वह भक्ति संगीत है जो वल्लभीकुल संप्रदाय के आचार्यो द्वारा स्थापित सेव्य ठाकुर (प्रतिमा) के सम्मुख होता है। यह ठाकुर बड़े मकान (हवेली) में एक पूजा घर बनाकर उसमें बाल भाव से स्थापित होते है और उनकी बालभाव में ही अष्टयाम की सेवा आठ झांकियों में की जाती है और षड् ऋतु में इन कृष्ण स्वरूप रूपी बालक की आवश्यकतानुसार मनोवैज्ञानिक रीति से जो सेवा पदों द्वारा की जाती है वही गायन हवेली संगीत कहलाता है। इस प्रकार की प्रातः से लेकर सांय तक 8 झांकियां (मंगला, श्रृंगार, ग्वाल, राजभोग) प्रातः की तथा (उत्थापन, संख्या आरती, .भोग, शयन) सायं की इस प्रकार अष्टयाम की सेवा और दर्शन आठ झांकियों मे विभक्त है। इस सप्रदाय का मुख्य अंग भोग-राग है।

पुष्टिमार्गीय कीर्तन (संगीत) की यह परम्परा गोस्वामी बिट्ठलनाथ जी द्वारा इस प्रकार व्यवस्थित की गई कि इसके माध्यम से मनुष्य को हर क्षण भगवान का गुणगान करते रहने के फलस्वरूप भगवान का सानिध्य बना रहता है। प्रातः काल से सायं पर्यन्त वह कीर्तन ही में लगा रहे तथा यह लगाव केवल एक ऋतु तक ही सीमित न रहकर वर्ष भर बना रहे। इसके लिए कीर्तन (संगीत) की व्यवस्था दो क्रमों में की गई है।

- दैनिक क्रम (नित्य-कीर्तन) इस क्रिया में प्रातःकाल से शाम तक का प्रतिदिन का क्रम आता है। इन मंदिरों में यह दैनिक क्रम आठ झांकियों में विभाजित है- (1) मंगला (2) श्रृंगार (3) ग्वाल (4) राजभोग (5) उत्थापन (6) भोग (7) संध्या-आरती (8) शयन।
- वार्षिक क्रम (वर्षोत्सव- कीर्तन) इस क्रम में वर्ष के उत्सवों का क्रम होता है। उत्सवों पर सेवा के प्रत्येक अंग (राग, भोग व शृंगार) का विशेष रूप से आयोजन रहता है।

वर्ष भर की राग योजना की दृष्टि से निम्नांकित तिथियां महत्वपूर्ण है:

- रथयात्राः (आषाढ़ शुः 2) से सभी झांकियों में राग मल्हार प्रारम्भ होता है।
- श्रावणः श्रावण कृष्ण 1 से हिडोले प्रारंभ होते है। मल्हार के साथ साथ अन्य ठंडे राग भी प्रयोग में आने लगते है।
- श्रीकृष्ण जन्माष्टमी: इस दिन सभी राग (ललित को छोड़कर) व्यवहार में आते हैं
- आश्विन शु 1 से नौ दिन तक नव विलास के पद राग मालव में (शयन) गाये जाते है।
- कार्तिक शु 11 (प्रबोधिनी) से गर्म रागों का गाया जाना प्रारंभ होता है। इस दिन केवल राग ललित प्रवेश करता है।
- मकर संक्रान्ति (लगभग पौष कृ०30) से विशेष रूप संहिता के पदों में राग ललित व मालकौंस प्रारंभ होते है जो शुक्ल 15 तक चलते है।
- मार्गशीर्ष कृ० 1 से वृतचर्या के पद प्रारंभ होते है। सभी स्थानों (झांकियों में) पर गर्म रांगों का व्यवहार होता है। सारंगादि राग बंद हो जाते है।
- बसंत पंचमी (माघ शु० 5) से फाल्गुन कृ० 30 तक सभी झांकियों में राग बसंतु गाया जाता है।
- अक्षय तृतीया (वैशाख शु. 3) से राजभोग में सारंग राग व संध्या आरती में हमीर राग विशेष रूप से प्रयुक्त होते है।
- फल्गुन शु० 1 से पुनः सभी ठंडे राग खुल जाते है।
- स्नान यात्रा (ज्येष्ठ शु० 15) से रथयात्रा तक प्रातः खडिता के पदों में सूहा, सुधराई तथा सायंभोग व आरती में सोरठ राग चलता है।
- **प्रातः कालीन ठंडे राग :** भैरव, रामकली, देवगंधार, विलावल, विभास, मारवा, सारंग, धनाश्री, सूहा एवं मल्हार आदि।

सायंकालीन ठंडे राग : पूर्वी, गौरी, नट, कल्याण, ईमन, सोरठ, कान्हड़ा, अडाना, जैजैवंती, मल्हार आदि।

प्रातःकालीन गर्म राग : ललित, मालकौंस, पंचम, खट, तोड़ी, आसावरी, बंसत आदि।

सायंकालीन गर्म राग : नायकी, केदार, बिहाग, बिहायरी, रायसा जैतश्री, काफी, बसंत आदि!

A Pratibha Spandan's Journal
SWAR SINDHU
(National Peer-Reviewed/Refereed Journal of Music)
A UGC CARE listed Journal
ISSN 2320–7175 (O) | Volume 13, Issue 01, January-June, 2025
http://swarsindhu.pratibha-spandan.org © The Author(s) 2025

पुष्टिमार्गीय मंदिरों के संगीत में प्रयुक्त राग –

प्रस्तुत प्रणाली के प्रवर्तकों में रागों की सर्वाधिक संख्या में जानकारी सूरदास को जैसा कि उनकी रचनाओं में राग नाम उल्लेखों से ज्ञात होता है कि "सूरसारावली" में एक ही प्रसंग के अंर्तगत कुल 4 पंक्तियों में लगभग 40 रागों के नामों का उल्लेख है। यथा—

'ललिता ललित बजाय, रिझावति मधुर बीन कर लीने।

जानि प्रभात राग पंचम षट, मालकौंस रस भीने ॥

सुर हिंडोल, भेष, मालव पुनि सारंग सुर नट जान।

सुर सावंत भुपाली, ईमन, करत कान्हरौ गान ॥

ऊँछ अडाने के सुर सुनियत, निपट नायकी लीन।

करत विहाग मधुर केदारौ, सकल सुरीन सुख दीन ॥

सोरठ, गौड मल्हार, सोहिनी, भैरव ललित बजायौ।

मधुर विभास, सुनत बेलाबल, दंपति अति सुख पायौ ॥

देवगिरी देसाख देव पुनि, गौरी श्री सुखरास।

जैत सिरी अरु पुरवि तोडी, आसावार सुखराल।

रामकली, गुनकली, केतुकी, सुर सुघराई गावे।

जैजैवंती जगत मोहिनी, सुर सों बीन बजाये ॥

सुआ सरस मिलत प्रीतम सुख सिंधु वीर रस मान्यौ।

जानि प्रभात प्रभाती गायो, भौर भयौ दोउ जान्यो॥

सूर सागर — दो भाग (काशी नागरी प्रचारिणी सभा द्वारा सं 2009 में प्रकाशित) के अनुसार पदों की राग तालिका इस प्रकार है –

(1) विलावल	(2) कान्हरौ	(3) मारु	(4) धनाश्री
(5) रामकली	(6) नट	(7) सारंग	(8) केदारौ
(9) मल्हार	(10) परज	(11) विहागरौ	(12) गौरी
(13) सोरठ	(14) आसावरी	(15) देवगांधार	(16) सूहा विलावल
(17) टोडी	(18) झिंझौटी	(19) गूजरी	(20) कल्याण
(21) जैतश्री	(22) अहीरी	(23) नट नारायण (नारायणी)	(24) मुल्तानी धनाश्री
(25) खुभावती	(26) विभास	(27) भोपाली	(28) नायकी
(29) काफी	(30) जैजैवंती	(31) गौड़ मल्हार	(32) सूहौ
(33) श्री हरि	(34) ललित	(35) गौड	(36) पूर्वा
(37) सुधराई	(38) मेघ मल्हार	(39) श्री	(40) अडानौ
(41) परासी	(42) विलावल रामकली	(43) हमीर	(44) गुन सारंग
(45) पूरिया	(46) राज्ञी हठीली	(47) विलावल आल्हैया	(48) देव साख
(49) ईमन	(50) गंधरी	(51) अल्हैया	(52) संकरा भरन
(53) कुरंग	(54) संकीर्ण	(55) कर्नाटी	(56) वैराटी
(57) सानुत	(58) राज्ञी श्री हठी	(59) राज्ञी रामगिरी	(60) राज्ञी मल्हार
(61) बसंत	(62) होरी	(63) देसकार	(64) देवगिरि
(65) षटपदी			

SWAR SINDHU
(National Peer-Reviewed/Refereed Journal of Music)
A UGC CARE listed Journal
ISSN 2320–7175 (O) | Volume 13, Issue 01, January-June, 2025
http://swarsindhu.pratibha-spandan.org © The Author(s) 2025

उक्त तालिका में संपादन की त्रुटि ज्ञात होती है क्योंकि इसमें अनेक रागों के नाम संदेहास्पद हैं यथा षटपदी, होरी, राज्ञी, श्री हठी व उसके प्रकार सानुत, संकीर्ण, कुरंग हठीली राज्ञी के अन्य प्रकार।

सूर सारावली व सूर सागर में प्राप्त लगभग साठ राग प्रस्तुत प्रणाली में उस समय अवश्य गाये जाते होंगे। लेकिन आज हमें यहाँ प्रयुक्त रागों की संख्या लगभग चालीस ही दिखाई देती है। उनमें से भी पंचम, षट, श्री शंकराभरन, कर्णाटकी, विहागडा, परज, बंगला व झिझौटी आदि अनेक रागों को लुप्त प्रायः ही समझना चाहिये क्योंकि इन रागों में मुश्किल से एक बंदिश प्राप्त होती है तथा राग स्वरूपों की दृष्टि से भिन्न-भिन्न स्थानों पर इतना मत भेद मिलता है कि परम्परा के नाम पर इनके बारे में कुछ भी नहीं कहा जा सकता।

पुष्टिमार्गीय कीर्तन में प्रयुक्त होने वाले वाद्य –

पुष्टिमार्गीय (अष्ट छाप) परंपरा के सभी कवि उच्चकोटि के भक्त व गायक थे। इनमें सूरदास का स्थान सर्वोपरि है। सूरदास द्वारा रचित एक पद में अनेक वाद्यों का उल्लेख एक साथ मिलता है। उदाहरणस्वरूप-

रूँज मुरज डफ ताल बाँसुरी झालर को झंकार

बाजत बीन रबाब किन्नरी अमृत कुन्डली यन्त्र

सुर सुरमंडल जलतरंग मिलकर मोहिनी यंत्र।

विविध पखावज आवज संचित विच-विच मधुर उपंग।

सुर सहनाई सरस सारंगी उपजत तान तरंग।

कंस ताल कठताल बजावत शृंग मधुर महुचंग।

मधुर खंजरी पटह पणव मिल सुख पाव तरभंग

निपटन केरी श्रवणन धुनि सुनि धीर न रहे ब्रजवाल।

मधुर नाद मुरली को सुन के भेंटे श्याम तमाल।

अष्ट छाप के कवियों ने भगवान कृष्ण के जीवन के विविध प्रसंगों पर अनेक वाद्यों के बजाने का उल्लेख किया है। कुभनदास के पद की एक पंक्ति निम्नलिखित है

"झाँझ बीन परवावज किन्नरी डफ मदंग बजाइये।"

कृष्णदास के पद की एक पंक्ति-

"तहाँ बाजत बीन रबाब किन्नरी अमृत कुण्डली यंत्र।"

कृष्ण जन्म की बधाई, रास, होली बसन्त, वर्षा मल्हार, हिंडोला आदि के अवसर पर प्रभु को रिझाने वाले पदों में भी इस प्रकार का वर्णन मिलता है। भगवान श्री कृष्ण की बाललीला से लेकर रास लीला तक के कृष्ण चरित' को समयानुकूल राग रागिनियों में निबद्ध पदों का गायन भक्त गण वाद्यों के साथ गाते थे। अष्ट प्रहर की सेवा विधि में पूजन की कोई भी क्रिया गायन वादन के बिना पूर्ण नहीं होती थी। उदाहरण स्वरूप-

"बाजत ढोल दमामा चहुँ दिश ताल मृदंग उपंग।"

-नन्द दास

'बाजत ढोल भेरि और महुवर नौबत धुनि घनघोर बजाई।"

-परमानन्द दास

"बाजत आवज उपंग बाँसुरी मृदंग चंग।"

SWAR SINDHU
(National Peer-Reviewed/Refereed Journal of Music)
A UGC CARE listed Journal
ISSN 2320–7175 (O) | Volume 13, Issue 01, January-June, 2025
http://swarsindhu.pratibha-spandan.org © The Author(s) 2025

-छीत स्वामी

"बाजत ताल मृदंग झांझ डप विच. विच मोहन मुरली धुनि थोरी।"

-गोविन्द स्वामी

"ढोल निसान दुर्दुभि बाजत मद भेरी आज सहनाई।"

-चतुर्भुजदास

इस प्रकार अष्ट छाप के भक्त कवि वाद्यों के सफल प्रयोगकर्त्ता ही नहीं, वरन् भावानुभूति या अभिव्यंजना के प्रदर्शन में वाद्यों की उपयोगिता को स्वीकार करने थे। उनके अनुसार सांगीतिक वातावरण की सृष्टि में इन वाद्यों का सहयोग महत्त्वपूर्ण आवश्यक था।

"तत्ततं सुषिरं चावनद्धं घनमिति स्मृतम् ।

चतुर्धा तत्र पूर्वाभ्यां श्रुत्यादिद्वारतो भवेत ॥

'ततं वीणादि सुषिरं वंशादि मुरजादि च ।

अवनद्धं धनं कांस्यं तालादि परिकीत्तितम् ॥"

अर्थात् तत, सुषिर, अवनद्ध तथा धन – ये चार भेद माने गए हैं । 'तत' वाद्य श्रेणी के अन्तर्गत तार अथवा तांत इत्यादि से बजने वाले तानपुरा, सितार, वीणा, सारंगी सदृश याद आते हैं। वायु से चलने वाले वाद्य 'सुषिर' कहलाते हैं जैसे शंख, वंशी, शहनाई, नागस्वरम् आदि तथा चमड़े से मढ़े हुए वाद्यों में मृदंग, मुरज, पटह, पणव, भेरी, डमरू जादि 'अवनद्ध' वाद्यों के अन्तर्गत तथा धातु, काष्ठ आदि से बने वाद्य जिन पर घात करने से सांगीतिक ध्वनियों का निर्माण हो – ऐसे वाद्य 'घन' कहलाते हैं इस श्रेणी के अन्तर्गत झांझ, घुंघरू, घण्टा, काष्ठतरंग इत्यादि वाद्य आते हैं । संगीत सम्बन्धित अनेक ग्रन्थों में अनेक प्रकार के वाद्यों का उल्लेख मिलता है

पुष्टिमार्गीय कीर्तन में प्रयुक्त होने वाले ताल –

धुवौ, मठो, रुपकश्य, झंपा, त्रिवट एवच।

अडता लैकतालश्च सप्त ताला प्रकीर्तिता॥

-वुरहानपुर के मृदंगाचार्य श्री गोविन्द देवरावजी के अनुसार

वर्तमान काल में वैष्णव सम्प्रदायों की परम्परागत रचनाएं अधिकतर चौताल, धमार, रूपक, दीपचन्दी तथा तीन ताल में बद्ध हुई मिलती हैं । इसके साथ ही साथ ग्रन्थों में भक्त कवियों द्वारा रचित पदों में कुछ अन्य अप्रचलित तालों के अन्तर्गत पटताल, विपुलक, जति ताल, अठ ताल, ध्रुवताल, चंपक ताल आदि का भी उल्लेख मिलता है। यह तो मानी हुई बात है कि प्रत्येक युग में प्रयुक्त गायन शैलियों, रागों व तालों में से कुछ प्रकार विशेष रूप से प्रचलित हो जाते हैं और कुछ रह जाते हैं। इसी तथ्य के अन्तर्गत आज भी परम्परागत कीर्तनियाओं व समाजगायकों के पास चौताल, तीनताल, धमार, रूपक, दीपचन्दी, झपताल, त्रिवट तथा चर्चरी आदि तालों में बद्ध पद ही अधिकांश सुनने को मिलते हैं।* प्रयत्न स्वरूप छन तालों में से 'कुछ तालों की प्राचीनता को खोजने का प्रयास करते हुए इस बात की और अनायास ही ध्यान जाता है कि 'नाट्यशास्त्र', 'संगीत रत्नाकर', 'संगीत दामोदर' आदि ग्रन्थों में वर्णित मार्ग तालों की मात्राओं की साम्यता आधुनिक समय में प्रचलित तालों से होते हुए भी उन मार्ग तालों को आज अधिकतर संगीत प्रेमी नहीं जानते । अतः विचार किया जा सकता है कि कला का निर्माण सामाजिक परिस्थितियों तथा लोकरुचि पर आधारित होता है और यह दोनों ही परिवर्तनशील हैं । विभिन्न युगों में समय के साथ-साथ जिस प्रकार वाद्यों, गायन शैलियों तथा कला संरचना के आधार में परिवर्तन आता रहा हैं उसी प्रकार तालों में भी परिवर्तन होना स्वाभाविक ही है, क्योंकि परिवर्तित गायन शैलियों के अनुकूल तालें ही प्रयोग में आनी चाहिए । इसी 'आवश्यकता' के महत्व को समझते हुए देखा जा सकता है कि बारह मात्रा की 'सम्पक्वेष्टाकम् नामक मार्ग ताल का अस्तित्व होते हुए भी शारंगदेव ने बारह मात्रा की ही अन्य (देशी) तालों का निर्माण किया जैसे कुडुक्क, पटताल, आदि । पश्चातवर्ती समय में बारह मात्रा की ही चौताल व एकताल का निर्माण हुआ । प्राचीन शास्त्रों में वर्णित एक ही ताल के मात्रा, सम, ताली, खाली, विभागादि सभी शास्त्रों में

SWAR SINDHU
(National Peer-Reviewed/Refereed Journal of Music)
A UGC CARE listed Journal
ISSN 2320–7175 (O) | Volume 13, Issue 01, January-June, 2025
http://swarsindhu.pratibha-spandan.org © The Author(s) 2025

एक समान हो-यह आवश्यक नहीं है, क्योंकि प्राचीन ग्रन्थों में वर्णित अनेक तालों के स्वरूपों में विभिन्न ग्रन्थकारों द्वारा कहीं भिन्नता दिखाई देती है तो कहीं तालों में अभिन्नता।

निष्कर्ष

इस प्रकार हवेली संगीत (पुष्टि मार्गीय) संगीत की समृद्ध परंपरा का प्रतीक है। कृष्ण भगवान इनके आराध्य देव हैं जो 64 कलाओं से पूर्ण है। भारतीय दृष्टिकोण के अनुसार संगीत ईश्वर के अनुसंधान से परममंगल का विधायक है। संपूर्ण भारतीय संगीत एक आध्यात्मिक अनुभूति, उपासना और चिन्तन आनन्द में लीन हो जाने की साधना है। भारत की समस्त धार्मिक परंपराओं में अन्य मतभेद होते हुए भी संगीत की महत्ता को निर्विवाद रूप से स्वीकार किया गया है। मन की चंचल प्रवृत्तियों का निराकरणकरके चित्त की एकाग्रता से मानव मंगल की सिद्धि, यही संगीत सम्बन्धी भारतीय दृष्टिकोण है।

सन्दर्भ

शर्मा, प्रो० स्वतंत्र. 2018. अप्रचलित राग और ताल. इलाहाबाद: अनुभव पब्लिशिंग हाउस
शर्मा, डॉ० महारानी. 2008. संगीत मणि (भाग-1). इलाहाबाद: श्री भुवनेश्वरी प्रकाशन
शर्मा, प्रो० सत्यभान. 2011. पुष्टिमार्गीय मंदिरों की संगीत परम्परा हवेली संगीत. नई दिल्ली: राधा पब्लिकेशन्स
बसु, डॉ० पुष्पा. 2013. संगीत निबन्ध कुंज. वाराणसी: मनीष प्रकाशन
शर्मा, अंजू. 1996. ब्रज संस्कृति में संगीत. नई दिल्ली: राधा पब्लिकेशन्स
सक्सेना, राकेश बाला. 1990. मध्ययुगीन वैष्णव सम्प्रदाय में संगीत. वाराणसी: मनीष प्रकाशन